REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 7 | ISSUE - 9 | JUNE - 2018

भारतीय देव परम्परा में वैदिक देवता

Ashutosh Kumar Gupta

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति में जीवन का मूलाधार धर्म हैं। धर्म शब्द से एक तरफ जहॉ दैनन्दिन जीवन में उपयोगी कर्तव्यों से अभिप्राय ग्रहण किया जाता है। वहीं दूसरी तरफ विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों से। भारत सभ्यता के आदिम काल से ही विभिन्न धर्मों का उद्गम स्थल रहा है। यहॉ हिन्दू धर्म की वैदिक पौराणिक तथा शाक्त, जैन, बौद्ध आदि विभिन्न शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय धर्मिक विचाराधारा का उन्मेष सिन्धु घाटी की सम्यता के युग में सर्वप्रथम दृष्टिगत होता है। किन्तु प्राचीन भारत मे धार्मिक विकास के सम्बन्ध में एक सुनिश्चित जानकारी सर्वप्रथम आर्यो के वैदिक साहित्य से प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत चार वेद—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक एवं उपनिषद माने जाते हैं।

ऋग्वेद जिसे वर्तमान युग में भी पवित्र माना जाता है, भारत का ही नहीं वरन सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम् धर्म ग्रन्थ है, जिसका रचनाकाल लगभग 1500 ई0 पू0 से 1000 ई0 पू0 के मध्य में रख सकते हैं। वैदिक धर्म का प्रारम्भिक रूप विस्तार से हमें ऋग्वेद से ही ज्ञात होता है। ऋग्वेद स्तुतिपरक मंत्रों का संग्रह है, जिसका उपयोग यज्ञों के समय अपने आराध्य देवताओं को आहूत एवं प्रसन्न करने के लिए आस्थावान आर्य करते थे। बाद में तीन वेद सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद कुछ भिन्न प्रकार के हैं। इनकी रचना ऋग्वेद के एक या दो शताव्दी पश्चात हुई। ब्राहम्ण ग्रंथ वृहद् है, जो वेदों के परिशिष्ट माने जाते हैं। इसी प्रकार आरण्यक एवं उपनिषद् भी क्रम से ब्राह्मण ग्रन्थो के परिशिष्ट माने जा सकते हैं। ब्राहमण ग्रंथों का रचनाकाल सामान्य रूप से 800 ई0पू0 से 600 ई0पू0 के मध्य रखा जा सकता है। ब्राह्मण आरण्यक, उपनिषद् तथा इनके पूर्व के ऋग्वेद के अतिरिक्त अन्य तीन वेद, उत्तर वैदिक युगीन धर्म के अध्ययन के स्रोत हैं।

वैदिक देवता :

वैदिक धर्म के अन्तर्गत अराधना के मुख्य विषय देव थे। देव शब्द की व्युत्पत्ति दीप्त्यर्थक दिव् धातु से हुई हैं, फलतः देव वह है जो चमकता है और अपने ससर्ग में आने वाले को भी देदीप्यमान कर देता है। इस प्रकार देव शब्द की उत्पत्ति हुई है, उज्ज्वलता एवं प्रकाश से सम्बन्धित है और इस अर्थ में देवता प्रकाशमान थे। यास्क में अनुसार — 'देवो दानाद् दयोतनाद् दीनवा द्वा अर्थात् लोकों में भ्रमण करने वाले प्रकाशित होने वाले तथा भोज्य आदि सुख चैन समस्त पदार्थों को प्रदान करने वाले को देवता कहते हैं। जब जीवन का लक्ष्य ही प्रकाश बन गया और जब जीवन का अधिकरण ही ज्योति बन गयी तब इस जीवन प्रांगण का यह लोक भी तो प्रकाश का ही आंगन बन जाता है। वैदिक ऋषियों का लोक जिसमें देवता संचरण करते हैं, अन्धकार, माया और जादूगरी का क्षेत्र न होकर प्रकाश एवं प्रताप का क्षेत्र था। उदासीनता अथवा विराग का क्षेत्र न होकर कर्म का और लोक संग्रहार्थ उद्योग का क्षेत्र था।

वैदिक देवता प्रकृति के अधिष्ठातृ चेतना शक्ति है, जिन्हे वैदिक ऋचाओं में मूर्त प्राणी के रूप में चित्रित किया गया है। उनकी सत्ता मानव रूप में स्वीकार की गयी है। समस्त देवता किसी न किसी प्रकृति की शक्ति

से सम्बद्ध है। परम्परया यह विश्वास चला आ रहा है कि प्रकृति की सभी वस्तुएं तथा घटनाएं जिनसे मनुष्य घिरा है, चेतन और दिव्य हैं। देवताओं की परिकल्पना के मूल में यही विश्वास एवं आस्थापरक भावना सन्निहित है। वेदों के वास्तविक देव विशिष्ट मानव हैं, जो मानवोचित आकांक्षाओं और प्रेरणाओं से ओत प्रोत मानव की भॉति पैदा हुए किन्तु अन्तर इतना है कि ये अमर हैं। ये सभी बिना किसी अपवाद के प्रकृति की गोचर घटनाओं अथवा तत्वों के दैवीकृत प्रतिनिधि हैं।

देवोत्पत्ति के सम्बन्ध में वैदिक सूक्तों में अनेक पूराकथाएं हैं, सहिताओं के दार्शनिकों सूक्तों में देवों की उत्पत्ति को अधिकतर जलतत्व से सम्बद्ध माना गया है। अथर्ववेद की उक्ति है कि देवगण असत् से उद्भूत हुए। सृष्टि सम्बन्धी एक सूक्त का कथन है कि देवताओं की उत्पत्ति जगत की सृष्टि के पश्चात् हुई, इसके अतिरिक्त सामान्यतया देवताओं को आकाश और पृथ्वी की सन्तान कहा गया है। अन्य एक स्थल पर प्रत्यक्षतः विश्व के तीन स्तरों के अनुरूप देवों की त्रिस्तरीय उत्पत्ति अदिति से जल से एवं पृथ्वी से विवृत हैं कुछ स्थलों पर देवों की माता एवं पिता वृहस्पति तथ सोम कहे गये हैं। सात या आठ एवं कहीं–कहीं ग्यारह देवताओं के समूह आदित्यों को आदिति का पुत्र कहा गया है। मैक्समूलर का कथन भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है –

“Aditi, an ancient god or goddess, is in reality the earliest name invented to express the Infinite; not the Infininte as the result of a long process abstract of reasoning, but the visible infinite, visible by the naked eye, the endless expanse, beyond the earth beyond the clouds, beyond the sky.

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक आर्यों का प्रकृति के शक्तियों के प्रति आकर्षण था। वे प्राकृतिक वस्तुओं एवं उनके कार्य व्यापारों के स्नेहिल भावों और आनन्दमयी दृष्टि से निरखते थे। प्राची में नवोदित प्रातः कालीन सूर्य की अभिराम किरणों तथा रात्रि में सोम की सुधायुक्त शीतल रश्मियों को देखकर प्रफुल्लित हो उठते थे। हापकिन्स का अभिमत है कि देवताओं को प्राकृतिक दृश्यों के अधिष्ठाता के रूप में स्वीकार किया गया। भौतिक जगत की उत्पत्ति के निमित्त ही उनकी कल्पना की गयी।[1] वैदिक साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ के अध्ययन से ही स्पष्ट है कि प्रारम्भ में वैदिक धर्म बहुदेववादी अर्थात् अनेक देवताओं में विश्वास का था। उस समय प्रकृति की विविधताओं को अनेकानेक देवताओं की कल्पना करके विवृत किया गया। इस प्रकार विविध देवताओं की सत्ता का आभास बहुदेववाद का परिचय देता है।

प्रत्येक वैदिक देवता को पृथक–पृथक महत्व प्रदान किया गया। उन्हें जगत में स्रष्टा एवं नियन्ता के रूप में समादृत किया गया है। इसी विश्वास को दृष्टि में रखते हुए वैदिक कवि जिस देवता का स्तवन कर रहे होते हैं उसी की प्रशस्ति में इतना विभोर हो जाते हैं कि उसमें गुणों की असंगति की सीमा तक अतिरंजित कर देते हैं। इसे मैक्समूलर ने ‘हीनोथीज्म की संज्ञा दिया जो एक विवादास्पद सिद्धान्त के रूप में स्वीकृत किया जाता है। इसके अन्तर्गत अलग– अलग देवता को बारी–बारी से सर्वश्रेष्ठ मानने की भावना विद्यमान थी। ठीक इसी के बाद जगत के स्रष्टा के रूप में प्रजापति, अथवां परम ‘पुरुष की परिकल्पना ने एकेश्वरवाद को जन्म दिया[2] और जब उसे सर्वश्रेष्ठ रूप में स्वीकृति प्रदान की गयी तब सर्वेश्वरवाद का सिद्धान्त सामने आया।[3] सभी देवताओं में एक तत्व विद्यमानता के भाव भी ऋग्वेद में ही परिलक्षित होते हैं जहॉ एक सद्विप्रा वहुधा वदन्ति, के साथ अद्वैतवाद का सूत्रपात माना जा सकता है, इस सिद्धान्त को मोनोथीइज्म की संज्ञा प्रदान की गयी। यास्क ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है कि समस्त देवगण एक ही आत्मा के प्रत्यंग रूप हैं, उसी आत्मा का विभिन्न प्रकार से पूजन–अर्चन होता है।[4]

वैदिक देवमण्डल का वर्गीगरण एवं स्वरूपः

ऋग्वेद एवं अथर्ववेद दोनो में देवताओं की कुल संख्या तैंतीस बतायी गयी है।[5] अनेक स्थानों पर इसे ग्याहर तीन गुना, के रूप में व्यक्त किया गया है। एक स्थल पर कहा गया है कि ग्यारह स्वर्ग में, ग्यारह पृथ्वी पर और ग्यारह जल (वायु) में निवास करते है।[6] इसी प्रकार अथर्ववेद भी देवों का स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी पर निवास करने वालों के रूप में निर्देश देता है। तैंतीस की संख्या देवों की पर्याप्त संख्या नहीं स्वीकार की जा

सकती क्योंकि वाजसनेयी संहिता[7] के एक मंत्र में देवों की संख्या 3339 बतायी गयी है। ब्राह्मण ग्रंथों में भी देवताओं के तीन वर्ग उल्लिखित हैं, जिसे 8 वसुगण 11 रूद्रगण तथा 12 आदित्यगण रूप में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु इनकी संख्या तैंतीस बनाने के निमित्त शतपथ ब्राह्मण में द्यौस और पृथ्वी अथवा इन्द्र और प्रजापति को सम्मिलित किया गया है जबकि ऐतरेय ब्राह्मण में वायष्कार और प्रजापति को सम्मिलित किये गये हैं।

इस प्रकार वैदिक देवमण्डल के समस्त देवताओं का तीन वर्ग दर्शित है। त्रिपदीय वर्गीकरण का अनुसरण करते हुए यास्क विभिन्न देवों अथवा एक ही देव के विभिन्न रूपों को तीन लोको के अन्तर्गत रखते हैं –

1. पृथ्वीस्थानीय अथवा पार्थिव–इसके प्रमुख देवता अग्नि, वृहस्पति एवं सोम हैं।

2. अन्तरिक्ष स्थानीय अथवा मध्यमस्थान – जिनमें इन्द्र, वायु, अपांनपात् मरूत, पर्जन्य और रूद्र मुख्य हैं।

3. द्युस्थानीय अथवा दिव्य– इस कोटि के देवताओं में सूर्य, सविता, विष्णु, वरूण, धौस, पूषन, मित्र, अश्विन और उषा प्रधान हैं।

यास्क का तो कथन है कि वेदों की व्यख्या करने वाले उनके पूर्व के निरूक्तकारों के मतानुसार वास्तव में केवल तीन ही देवों का अस्तित्व है जो इस प्रकार है – पृथ्वी पर अग्नि का अन्तरिक्ष में वायु अथवा इन्द्र का और स्वर्गलोक में सूर्य का निवास है। वास्तव में वैदिक ऋषियों ने प्रकृति के माध्यम से उस जगन्नियन्ता की लीलाओं के कारण रूप से उसके शक्ति प्रकाशन के तीन केन्द्रों अर्थात् पृथ्वी, वायु और आकाश की कल्पना जो केवल नाम मात्र हैं इन नामों की पूजा करने वाले सामान्य जनों का विश्वास और ज्ञान इतना विस्तृत न था कि इस बहुत्व में एकत्व की बात सोच सकें। अतएव बहुदेववाद का ही सहारा ग्रहण करते थे।

वैदिक देवताओं का स्वरूप –

वैदिक धर्म प्रारम्भ में बहुदेववादी था, अर्थात् अनेक देवों में विश्वास का था। ये देवता अधिकतर प्रकृति की अलौकिक एवं नियामक शक्तियाँ के मानवीकृत रूप थे, जिनमें व्यक्तित्व का आरोप किया गया था, जैसे सूर्य, वायु ,द्यौस (आकाश), पृथ्वी, अग्नि, वरूण, इन्द्र आदि। यद्यपि कि धर्म का मूल रूप रहस्याच्छादित है। फिर भी उसका प्राचीनतम रूप प्राकृतिक शक्तियों की उपासना का ज्ञात होता है। मानव जब विशुद्ध पाशविक चेतन की स्थिति से सर्वप्रथम वहिर्गत होता है, तब वह देखता है कि वह प्रकृति के जिन विशाल शक्तियों से घिरा हुआ है, उनके लगभग पूरी तरह अधीन है। यही कारण है कि वह इन शक्तियों के पीछे अदृश्य रूप से कार्यरत चेतन सत्ता की कल्पना कर लिया। इस तरह प्राकृतिक शक्तियॉ ही व्यक्तित्व द्वारा आरोपित होकर देवता के रूप में आई।

आर्यों के भारोपीय एकता के युग ही में संभवतः मानवाकार द्युः स्थानी देवताओं की जैसे कि द्यौ मित्र एवं अश्विन की भावना उभर आई थी। फलतः यह स्वाभाविक है, ऋग्वेद के देवता भी मानव हो, ऐसे मानव जिनकी शक्ति अति भौतिक हो, जो मरते न हो, किन्तु फिर भी जो जन्मते हों और मनुष्य की तरह पारिवारिक सम्बन्धों में डूबे हुए हों। तथापि वैदिक देवता मण्डल एक देवता ग्रीक देवता की तरह स्पष्ट व्यक्तित्व के सम्पन्न नहीं दृष्टिगत होता है। वैदिक देवताओं की कल्पना भी मानवीय धरातल पर की गयी थी। इनकी उपासना और परितुष्टि प्रार्थनाओं एवं यज्ञों द्वारा की जाती थी जबकि यूनानी देवताओं की तरह वैदिक देवताओं में मानवीकरण की पूर्णता नहीं उपलब्ध होती, उनका एक दूसरे से भेद अत्यन्त अस्पष्ट है। इसका मुख्य कारण यह है कि एक प्रकार के गुणों एवं शक्तियों का आरोप बहुत से देवताओं के समान रूप से किया गया मिलता है।

वैदिक देवताओं का भी मानवीकरण हुआ किन्तु ग्रीक देवताओं के प्रतिकूल उनके मानवाकृति के पीछे प्राकृतिक दृश्य झिलमिलाते दृष्टिगत होते हैं। वैदिक देवता में मानवाकृति की मात्रा काफी भिन्न है। कुछ देव ऐसे हैं, जिनमें क्रियाशील तत्व सतत विद्यमान रहता है। ' इन्द्र मात्र एक ऐसे देवता हैं, जो आधारभूत प्राकृतिक दृश्य से बहुत कुछ सीमा तक निर्मुक्त हो गये हैं, उन्हें दिव्य मानव माना जा सकता है, दूसरे शब्दों में उन्हें एक

प्रकार से सांस्कृतिक महापुरूष कहा जा सकता है। सूर्य, उषा, जल और अग्नि सतत दृश्यमान पदार्थ हैं और इनके नामोल्लेख मात्र से ही इसका असली भौतिक स्वरूप उजागर हो उठता है।[8] आप ऐसी देवियॉ हैं जो अपने आप को प्राकृतिक जल से पृथक नहीं कर सकी। उन्हें हम ऋग्वेद में विशुद्ध जल की तरह व्यवहृत पाते हैं और उन्हें सोम में मिल जाने के लिए निमंत्रण भी दिया गया है, किन्तु उनका अपना निजी रूप जल युवतियों का है जो मन में आते ही अपने तत्व (जल) को त्याग देती और मर्त्यों में विहार करने लगती है।

उपर्युक्त दृष्टांतों के परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि देवों सम्बन्धी वैदिक धारणा में रूपरेखा की अनिश्चतता तथा वैयक्तिकता का अभाव प्रायः सर्वत्र दर्शित होता है। इसका मुख्य कारण यही ज्ञात होता है कि वैदिक देवगण किसी भी अन्य भारोपीय जाति के देवताओं की अपेक्षा उन भौतिक घटनाओं के अधिक सन्निकट है, जिनका ये प्रतिनिधित्व करते हैं। यही कारण है कि वैदिक देवों का जो रूप दृष्टिगत होता है, उसमें मानवत्वरोपण लेश मात्र भी नहीं है, जैसा कि सूर्य, पृथ्वी तथा अन्य उदाहरणों से स्पष्ट है।

वैदिक आर्य इन देवों के प्रति भय, आश्चर्य और पूजा का मिला जुला भाव अपना लेता है, उनकी स्तुति में गीत गाता है और उन्हें प्रसन्न करने या अनुग्रह प्राप्त करने हेतु उनकी उपासना करता है या उन्हें बलि प्रदान करता ा

ब्लूम फील्ड ने तो यह विचार व्यक्त किया है कि भारत में प्रकृति के जो विशेष आकर्षण हैं, उनके कारण आर्यों के अन्दर प्रकृति के प्रति यह अविस्मरणशील आसक्ति आई हो।[10] वैदिक आर्य प्रकृति के अधिष्ठातृ चेतन शक्ति एवं उसके कार्य व्यापारों को मानवीकृत रूप प्रदान किया गया है।

जहॉ अनेक देवता किसी एक ही घटना के विभिन्न लक्षणों द्वारा उत्पन्न बताये गये हैं, वहां स्पष्टता का और अधिक अभाव परिलक्षित होता है।

वैदिक कवि कहता है – 'हे अग्निदेव तुम प्रकट होते समय वरूण के समान और समृद्ध होकर मित्र के समान होते हैं, हे अग्निदेव तुम सब देवता में केन्द्रित हो और तुम हविदाता यजमान के लिए इन्द्र के समान पूजनीय हो।[11]

ऋग्वेद में ही यह भी विचार व्यक्त मिलता है कि अलग–अलग देवता एक ही दिव्यात्मा के विभिन्न स्वरूप है, कि अलग–अलग देवता अनेक रूपों में वर्णन करते हैं, वे उसे अग्नि यम और मातरिश्वन् कहते हैं।[12]

वास्तव में देवताओं का जो भौतिक स्वरूप मानवत्व पर अरोपित है, वह केवल उनके क्रियाकलापों का वर्णन करने के निमित्त ही प्राकृतिक आधार का लक्षणात्मक प्रतिनिधित्व करता है।[13] यही कारण है कि सिर आकृति, मुख,, कपोल, नेत्र, केश, कन्धे, वक्षस्थल, पेट भुजाएं आदि का मुख्य रूप से इन्द्र और मरूतों के युद्ध उपकरण के संदर्भ में वर्णन है। सूर्य की किरणों को ही उनकी भुजाओं के रूप में विवृत्त किया गया है। प्रो0 मैकडानेल का तो कथन है कि देवताओं के स्वरूप की कल्पना वैदिक धर्म के अस्पष्ट होने के कारण ही ऋग्वेद में उनकी मूर्तियों अथवा मन्दिरों का प्राविधान नहीं मिलता।[14]

कुछ देव वेशभूषा युक्त वर्णित हैं। उषा को उज्जलवसना और कुछ को कवच तथा शिरस्त्राण से युक्त कहा गया है। इन्द्र नियमित रूप से एक वज्र रखते हैं। अन्य देवों को भी तोमर, युद्ध कुठार तथा धनुषवाण आदि शस्त्रों से सज्जित कहा गया है।

सामान्यतः देवताओं का आवास तृतीय स्वर्गलोक अथवा विष्णु के उच्चतम् पग का स्थल बताया गया है। इन्द्र बल के देवता थे और आर्योत्तरकाल में इन्द्र वर्षा देवता के रूप में चर्चित हुए । ऋग्वेद[15] में एक स्थल पर इन्द्र को समस्त देवों में युद्धरत बताया गया है।[16] युद्ध में इन्द्र ने अपने पिता का बध कर दिया था तथा उषा का रथ भग्न कर दिया था।

अग्नि, सूर्य आदि देवता यद्यपि झंझावत एवं प्रचण्ड स्वरूप वाले हैं, फिर भी प्रकृत्या उपकारी एवं समृद्धिदायक प्रतीत होते हैं। मात्र रूद्र ही एक ऐसे देवता हैं जिसमें कुछ विध्वंसकारी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं। वे

महामारी एवं प्रचण्ड वात या तूफान के देवता दृष्टिगत होते हैं। उनसे धन–जन पशु तथा आवास से दूर रहने के लिए ही स्तुति की गयी है।

नैतिकता के धरातल पर देवताओं का चरित्र समृद्ध हैं। सामान्यतः सभी देव सत्यवादी एवं निष्कपट आचरण वाले दृष्टिगत होते हैं नैतिकता एवं आचार के देवता के रूप में वरूण की विशेष प्रतिष्ठा थी। वे भूत के संरक्षक एवं नैतिक निमयों के प्रतिपालक कहे गये हैं। वरूण से सम्बद्ध सूक्तों में ऋक्संहिता के नैतिक आदर्श प्रकाश पाते है। वैसे वैदिक देवों में नैतिकता की अपेक्षा शक्ति का विशेष बाहुल्य दीखता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक देव तेज, प्रकाश तथा शक्ति तत्व के प्रतीक माने गये। अपार शक्ति युक्त, उदार, सर्वज्ञ, दयालु, निश्छल और अमरत्व आदि अनेक गुण हैं। वे पापियों–अपराधियों को दण्ड तथा सदाचारी एवं पुण्यात्मोां को वैभव प्रदान करते हैं। वैदिक देव ऋत् एवं सत्य के नियामक हैं। जहॉ तक मानवीकरण का प्रश्न है, यूनानी देवताओं की तरह मानवीकरण की पूर्णता नहीं मिलती। उनका एक दूसरे से भेद स्पष्ट नहीं क्योंकि एक ही प्रकार के गुणों और शक्तियों का आरोप बहुत से देवताओं में मिलता है ा

संदर्भ ग्रन्थ एवं पाद टिप्पणियाँ

1. Religions of India Hopkins – P. 11.17. म
2. ऋक् – (पुरूष–सुक्त) का मंत्र
3. ऋक् – 'पुरूष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भष्यम्।' 10–90–2
4. यास्क–निरूक्त–महाभाग्ययाद देवतायाः एक एवं आत्मा बहूधा स्तुयते एकस्यात्मनोडन्ये देवाः प्रत्यगानिं भवन्ति। 7–4–8–9
5. ऋक् – 3–7–1
6. ऋक – 1–139–11, अथ–10–7–13
7. वाज सं0 33–7
8. वैदिक धर्म एवं दर्शन – कीथ – अनु0 सूर्यकान्त प्रथम भाग पृष्ठ 72, 74
9. एमहिरियन्ना – भारतीय दर्शन की रूप रेखा– पृ0 29
10. ब्लूमफिल्ड : Religion of the Veda P. 82
11. वहीं पृष्ठ 85, 151
12. ऋक् – त्वमग्ने वरुणों जायते यत्त्व मित्रौ भविष्यत् समृद्धेः। त्वे विश्वे सहस्यपुत्रं देवस्त्वमिन्द्रो दायुधे मर्त्याय।।
13. ऋग्वेद – 1–105–15
    इन्द्र मित्रं वरुण मग्निमाहुरथो दिव्य स सुपर्णो गरूत्मान्।
    एकं सद्र विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मात रिश्वानमाहुः।।
14. वही पृ0
15. डॉ0 गोविन्द चन्द्र पाण्डेय – बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास पृं0 7
16. ऋक् 4/30/3/5

Ashutosh Kumar Gupta